© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 08 Issue: 07 | July - September 2017
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

हिन्दी में स्त्री–विमर्श की परम्परा

Suman Bala "Research scholor OPJS University Churu"

ISSN : 2278-6848 03
© International Journal for Research Publication and Seminar

पराधीनता का बोध और स्वाधीनता की चिन्ता

स्वाधीनता की चिंता प्रायः उसे ही होती हे, जिसे यह विवेक हो कि मैं पराधीन हूं, स्त्री के संदर्भ में यह बात, कब प्रकाश में आयी यह कहना कठिन है, लेकिन इतिहास इस बात का साक्षी है कि दुनियां के हर देश, वर्ग, नस्ल और सम्प्रदाय की स्त्री इसके एहसास से अवश्य गुजरी है, चाहे उसके विरोध का तरीका भिन्न हो, मौन और मूखर हो, लेकिन स्त्रियां वस्तु से व्यक्ति बनने की दिशा में अग्रसर थीं, और जिन्हें यह सुविधा सहज उपलब्ध नहीं था, वे म नही मन इसकी आकांक्षा अवश्य कर रही थीं जैसा कि प्रस्तुत लोक गीतों में वर्णित है,

अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो।
चाहे नरक में दीजो डार।।

उतरांचल में पहाड़ी स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला यह गीत स्त्री जीवन का आईना है, एक ग्रामीण स्त्री पुर्नजन्म में, नर्क और स्त्री – जीवन के विकल्प में से नर्क का चुनाव करती है, उसे फिर से स्त्री बनना कतई मंजूर नहीं है।

कत विधि सृजी नारी जग माही।
पराधीने स्वपनेहूं सुख नाहीं।।

पार्वती की विदाई की वेला में पार्वती की मां के द्वारा कहा गया, भावविहृल यह उद्‌गार किस स्त्री का सच नहीं है ?

लोकगीतों में स्त्री की पराधीनता का बोध बड़े दिलचस्प ढंग से हुआ है जिसे महिलाएं शादी ब्याह के मौके पर अभिव्यक्त किया करतीं थीं, चूंकि ये गीत गेय परम्परा की देन है इसलिए इसका कोई सुनियोजित इतिहास नहीं है, वरना स्त्री विमर्श की परम्परा की शक्ल शायद कुछ और होती। ''धिन उमादे सांखली'' नाम से राजस्थान में गाया जाने वाला गीत तो चारण काल का है, महत्वपूर्ण यह है कि चारणियों ने वीर–काव्य प्रायः नहीं लिखा, पर हास–परिहास और व्यंग्य उनके स्फूट दोहे में अवश्य मिलता है, प्रस्तुत है एक गीत जिसमें परिहास और व्यंग्य की बानगी मौजूद है ....

''धिन उमादे साँखली ते पिय लियो भुलाय,
सात बरसरो बाँछड्यो, तो किम रैन विदाय।
पगे बजाउँ घूँघरू, हाथ बजाउँ तूँब,
उमा आँचल मुलावियो, ज्यूँ साँवल की लूँव।''

लोकगीतों के आदिशोधकर्ता श्री रामनरेश त्रिपाठी का मानना है कि स्त्रियों के गीतों में पुरुषों का मिलाया एक भी शब्द नहीं है, स्त्री–गीतों की सारी कीर्ति स्त्रियों के ही हिस्से की है। यह संभव है कि एक–एक गीत की रचना में बीसों वर्ष और सैंकड़ों मस्तिष्क लगे हों, पर मस्तिष्क स्त्रियों के ही थे इसमें कोई शक नहीं है।

झरोखे से झाँक रही, मेरो जिया जाने,

राजा जी लाए सौतनिया, मैं दुल्हन सी लाग रही, मेरो जिया जाने; सौतन ने जायो, जायो एक ललना, मैं जच्चा सी लाग रही, मेरा जिया जाने; मैं चंदा जैसी नार राजा क्यों लाए सौतनियाँ ?

यहां उल्लेख्य गीत गाने वाले का जिया तो संतप्त है ही, सुनने वाला भी कम विचलित नहीं होता है यह जानकर कि सौतन ने बच्चे को जन्म दिया है, और उपेक्षिता जच्चे – सी लग रही है, यहां तो सुख दुःख की विभाजक रेखा ही मिट गयी है; हंसते – हंसते सब कुछ कह देने की ग्राम वधुओं की कला ने उद्‌व – शतक में अपनी छटा खूब बिखेरी है। कोमलता, हास – परिहास, धैर्य और सहिष्णुता कभी–कभी स्त्री के ऐसे अस्त्र बन जाते हैं कि इसके सामने बड़े से बड़ा भी पस्त हो जाता है, महादेवी वर्मा ने भी श्रृंखला की कड़ियां में स्त्री के इसी चातुर्य का उल्लेख किया है। वे कही हैं कि ''पुरूष चाहे उसे जीत कर लाया, चाहे अपहरण करके; चाहे उसकी इच्छा से उसे प्राप्त कर सका; चाहे अनिच्छा से; परन्तु उसने प्रत्येक दशा में नारी को अपनी भावुकता का अर्ध्य देकर पूजा। नारी भी नारियल के कड़े छिलके के भीतर छिपे जल के समान पुरुष की वाह्य कठोरता के भीतर छिपी स्निग्ध प्रवृति का पता पा गयी थी। अतः उसने सारी शक्ति केवल उसकी कोमल भावना को जगाने में लगा दी। उसने न अपनी भुजाओं में शक्ति भरने और उस शक्ति के प्रदर्शन से पुरुष को चमत्कृत करने का प्रयत्न किया और न अपनी विद्या बुद्धि से पुरुष को पराजित करने का

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 08 Issue: 07 | July - September 2017
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

विचार किया। वह जानती थी कि इन गुणों के प्रदर्शन से पुरुष में प्रतिद्वंदिता की भावना जगेगी, परंतु वह पराजित होकर भी वशीभूत ना हो सकेगा, क्योंकि प्रतिद्वन्द्वियों की हार– जीत में किसी प्रकार का आत्म–समर्पण संभव नहीं।

आदिकाल से ही यह नैसर्गिक प्रज्ञा, भारतीय ग्राम वधुओं के, लोकगीतों में लगातार व्यक्त होती रही है, परंतु दुर्भाग्यवश इन्हें ना तो क्रमबद्व किया गया, और ना ही संकलित कर इतिहास में दर्ज करने की कोशिश की गयी, लोकजिह्वा पर चढ़े इन गीतों को, हर ग्रामीण स्त्री ने गाया ही नहीं जिया भी है, जिसमें उनकी पराधीनता की पीड़ा और स्वाधीनता का स्वपन तैरता नजर आता है

काहे को ब्याही विदेश रे लखिया बाबुल मेरे,
भैया को दीन्हें बाबुल महला–दुमहला
हमका दिए परदेश
रे लखिया बाबुल मेरे।

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि फिर समाजसुधारक स्त्री शिक्षा पर क्यों जोर दे रहे थे ? दरअसल इन भद्रवर्गीय सुधारकों के सामने अहम् मसला ''अंग्रेजी शासन की नई परिस्थितियों में नई– शिक्षा सभ्यता की रोशनी में घरों के अंदर अपनी औरतों की नई आदर्श भूमिका (मॉडल रोल) में ढालना था, जो उनकी परम्परागत भूमिका का सुधरा और निखरा रूप था। औपनिवेशिक शासन के अर्न्तगत जब पुरूष अंग्रेजी–शिक्षा पाकर निकलने लगे तो, उनकी स्त्रियों का अनपढ़ ओर जाहिल रहना उन्हें खटकने लगा था। नए शासन के नियम–कायदे और वैज्ञानिक सभ्यता संस्कृति के संस्पर्श ने उनकी जीवन शैली को बदल दिया था, उन्हानें आचार–व्यवहार के नए तौर तरीकों को अपना लिया था, अब उन्हें अपनी स्त्रियों के बर्ताव और तौर–तरीकों में फूहड़ता और पूरातनता की झलक दिखने लगी थी, अब उनके सामने अंग्रेज स्त्रियों की कार्यकुशलता, स्वच्छता, व्यवहार कुशलता और शिष्टाचार अपनी घरेलू स्त्रियों के लिए आर्दश, मॉडल लगने लगा था, परिणामस्वरूप वे समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचें में कोई सुधार किए वगैर औरतों पर अपना नियंत्रण रखते हुए, उन्हें चुनिंदा क्षेत्रों में, घरों के अंदर ढालने की कोशिश करने लगे। महिलाऐं पहले भी पुरूषों के अनुकूल ही उनके द्वारा तयशुदा भूमिकाएं निभाती थी, और अब भी वही कर रही थी, अंतर था तो बस रूचियों और जरूरतों का, जिसमें शिक्षा का मुल्लमा चढ़ा कर उसकी अभिव्यक्ति को बाहरी रूप और तौर–तरीकों से चमकाने की कोशिश की गई थी। इस शिक्षित स्त्री की नई भूमिका की अर्न्तवस्तु बहुत हद तक वही पुरानी थी, अब उसमें अंग्रेजों से सीधे विक्टोरियन स्त्री संबंधों के कुछ और मूल्य जुड़ गये थे, जो स्त्री की परम्परागत भूमिका को और निखारते थे। पुरूष सुधारक स्त्रियों को शिक्षित करने की जरूरत जिन–जिन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु महसूस कर रहे थे, वे बेहद दिलचस्प था, जो तत्कालीन सुधारक विधवाओं के व्यभिचार से चिंतित थे, वे कह रहे थे, कि 'स्त्रयों के अशिक्षित रहने से व्याभिचार होता है, पढ़ी–लिखी स्त्री व्याभिचार नहीं करेगी वह धर्मग्रन्थ पढ़ते हुए सदाचारी बनी रहेगी।

20वीं सदी में श्रृंखला की कड़ियों की पहचान –

सीमंतनी उपदेश 19वीं सदी के आर्य–समाजी समाज सुधार के आंदोलन की उपज है, तो श्रृंखला की कड़ियां 20वीं सदी के तीसरे और चौथे दशक के नारी जागरण की देन हैं यद्यपि श्रृंखला की कड़ियां पर सीमंतनी उपदेश का कोई सीधा प्रभाव नहीं है, लेकिन दोनों में भारतीय स्त्री की गुलामी से मुक्ति की जो चिन्ता है उसमें निरन्तरता अवश्य है। श्रृंखला की कड़ियां में भारतीय स्त्री की पराधीनता की, प्रत्येक स्थिति की पहचान है और उससे मुक्ति की राह की खोज की चिन्ता भी है। भारतीय स्त्री की स्वाधीनता के बारे में महादेवी वर्मा का दृष्टिकोण व्यापक है। वे केवल संपन्न और शहरी मध्यवर्ग की स्त्रियों की स्वाधीनता की चिंता नहीं करतीं, वरन् श्रमजीवी समुदाय की स्त्रियों की जागृति और स्वाधीनता के बारे में भी सोचतीं हैं, उन्होंने ठीक ही लिखा है .... कि कृषक और अन्य श्रमजीवी स्त्रियों द्वारा श्रम से अर्जित स्वावलम्बन की भावना से प्रेरणा ले कर संपन्न और मध्यवर्ग की स्त्रियां भी अपनी मुक्ति की राह पर अधिक सहजता से आगे बढ़ सकती हैं।

श्रृंखला की कड़ियां तीसरे और चौथे दशक के उस नारी – आंदोलन की देन है, जिसमें महादेवी वर्मा सक्रिय रूप से सम्मिलित थीं, इसलिए उसमें उस समय की नारी चेतना के जागरण के अनुगूंजे है; उसकी शक्ति की, सीमाओं और संभावनाओं की भी महादेवी वर्मा के मन में भारतीय नारी की भावी स्वाधीनता का विश्वास है, लेकिन वे यह जानती हैं कि स्वाधीनता याचना से नहीं मिलती, उसके लिए संघर्ष करना पड़ता है। वे इसलिए कहती हैं कि ''भारतीय नारी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राणवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं उसके अधिकारों के संबंध में यह बात सत्य है कि वे भिक्षावृत्ति से न मिले हैं और न मिलेंगे, क्योंकि उनकी स्थिति आदान–प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न हैं। 20 स्त्री की गुलामी की मूल वजह उसकी आर्थिक पराधीनता है, महादेवी वर्मा इससे भी इक्तिफाक रखतीं थीं, इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने स्वयम् कहा है कि ''समाज ने स्त्री को पुरूष की सहायता पर इतना निर्भर कर दिया है कि उसका सारा त्याग, सारा स्नेह और सम्पूर्ण आत्मसमर्पण बंदी के विवश कर्त्तव्य के

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 08 Issue: 07 | July - September 2017
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

समान है।'' समाज में स्त्री पुरूष के आचार–व्यवहार और शिष्टाचार की नीति दोहरे मापदंड का शिकार है, यहां स्त्री को छुई–मुई गुड़िया बनने की हिदायत दी जाती है। दरअसल बचपन से ही उसकी परवरिश बंद घरे में की जाती है, उसे अबला बनाया जाता है महादेवी वर्मा ने स्त्री को अबला बनाये जाने की प्रक्रिया का खुलासा करते हुए कहा है कि ''न स्त्री को अपने जीवन का कोई लक्ष्य बनाने का अधिकार है, और न समाज द्वारा निर्धारित विधान के विरूद्ध कुछ कहने का अधिकार है, वातावरण भी धीरे–धीरे उसे ऐसे ही मूक आज्ञा पालन के लिए प्रस्तुत करता रहता है'' महादेवी वर्मा का प्रस्तुत कथन हालांकि तेजी से स्त्री के पक्ष में बदलते दौर में सौं प्रतिशत प्रांसगिक नहीं हैं फिर भी ग्रामीण और कस्बाई स्त्री के लिए सौं फीसदी सच है।

स्त्री प्रश्न पर केन्द्रित पत्रिकाएं

नवजागरण काल से ही स्त्री प्रश्न पर केन्द्रित अनेक पत्रिकाएं प्रकाश में आ रहीं थीं जिसका तत्कालीन परिस्थितियों में सामाजिक और ऐतिहासिक महत्व था, भारत की धर्मप्राण और रूढ़िग्रस्त जनता वैज्ञानिक और विकसित संस्कृति के संस्पर्श से सजग हो चुकी थी, शिक्षा और संचार सुविधाओं के जाल ने उनके जीवन शैली और मनोदशा को प्रभावित करना शुरू कर दिया था, स्त्री भला कब तक इससे अछूती रहती छन–छन कर ही सही रोशनी की किरण उस तक भी पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से पहुंच रही थी, और भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक नयी स्त्री का जन्म हो रहा था। आंशिक रूप में ही सही, इन पत्रिकाओं ने मध्यवर्गीय शैक्षिक स्त्रियों में पितृसत्ता के दोहरे मापदंड के खिलाफ विद्रोह का बीज बो दिया था, आज वही वट–वृक्ष पल्लवित – पुष्पित नजर आ रहा है। नवजागरण काल में जो पत्रिकाएं प्रकाशित हो रहीं थी उनमें स्त्री की आजादी, उसकी अस्मिता, स्त्री–शिक्षा, स्त्री–पुरुष नैतिकता का असमान ढांचा, स्त्री–अधिकार, स्त्री और युद्ध जैसे विषयों पर मुख्य रूप से लेख आते थे। हिन्दी भाषी क्षेत्र में स्त्रियों की दशा सुधरने के लिए आवाज उठाने वाली पहली पत्रिका 1874 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित बालाबोधिनी थी, परन्तु विड़म्बना यह थी, कि भारतेन्दु की इस स्त्री–संबंधी पत्रिका में स्त्री को एक इंसान के रूप में देखने और उसकी समस्याओं को समझने का कोई प्रयत्न नहीं दिखता। दो वर्षों तक प्रकाशित हुई इस मासिक पत्रिका के किसी भी अंक में स्त्रियों के किसी भी अधिकार के सवाल नहीं उठाया गया इस मासिक पत्रिका के किसी भी अंक में स्त्रियों के किसी भी अधिकार का सवाल नहीं उठाया गया, न उन्हें नए ज्ञान–विज्ञान की रोशनी में अपने जीवन के बारे में खुद सोचने की कोई प्रेरणा दी गई। स्त्री आदर्श कैसा हो यह बताने के साथ–साथ, स्त्री आदर्श कैसा ना हो इसे बतलाने के लिए भारतेन्दु ने अपनी पत्रिका में किसी बिहारी चौबे की लिखी ''ऑरलेनस की कुमारी'' की कहानी छापी। 1876 के मार्च से लेकर जून तक धारावाहिक में छपी यह कहानी फ्रांस की मशहूर जांबाज और मिथक बन चुकी साहसी नायिका ''जॉन ऑफ आर्क'' के जीवन पर लिखी गई थी। 1412 ई. में एक किसान के घर पैदा हुई जॉन ने खुद को दैवी शक्तियों से युक्त बताकर फ्रांसिसी फौज का नेतृत्व करते हुए अंग्रेजों को हराया था, बाद में बंदी बनाये जाने पर उसके असाधारण गुणों से भयभीत अंग्रेजों ने उन्हें जिंदा जलाकर मार डाला था, सिर्फ 19 वर्ष में शहीद हो गई एक ऐतिहासिक नायिका का जीवन वृतांत लिखते हुए बिहारी चौबे ने अन्त में यह अद्भुत नतीजा निकाला है कि जो स्त्रियां अपना स्त्री–धर्म छोड़कर देवियों जैसी वीरता दिखने की कोशिश करेंगी, उनकी दुर्गति ऐसी ही होगी जैसी जॉन की हुई। भारतेन्दु की इस (बालाबोधिनी) पत्रिका में सीता और सावित्री को स्त्रियों का आदर्श मानने वाली इस पत्रिका में स्त्रियों से संबंधित सबसे लम्बी रचना बालाप्रबोध थी जो 1875 की जनवरी से शुरू होकर अगले तीन चार अंकों तक छपी। बिजनौर पीलीभीत के पास सिकंदराबाद के निवासी हीरालाल ने इसे सरकारी स्कूलों में लड़कियों के पाठयक्रम में लगवाने के मकसद से लिखा था, स्कूली लड़कियों का जैसा पाठ्यक्रम भारतेन्दु चाहते थे, यह किताब ईक उसी के मुताबिक थी इसमें भद्रवर्गीय पारिवारिक मूल्यों के अनुरूप स्त्रियों को परम्परागत घरेलु कामों को और भी निपुणता और सफाई के साथ पूरा करने की शिक्षा दी गई थी। बच्चों का पालन कैसे करना चाहिए, पति की सेवा कैसे करनी चाहिए, सास–ससुर, ननद–जेठानी और देवर–जेठ के साथ कैसे नम्रता से पेश आना चाहिए, इन सबकी शिक्षा बड़े ब्योरे के साथ दी गई थी। परम्परागत स्त्री धर्म के अन्तर्विरोधों पर या उसमें निहित अन्याय पर जरा भी गौर किए बिना उसे और भी सच्चे ढंग से लागू करने का आग्रह किया गया, फलस्वरूप स्त्रियों पर घरेलु कामों का बोझ और भी बढ़ गया ''बालाप्रबोध'' में स्त्रियों को दिन भर में इतने काम करने की हिदायत दी गयी कि वे चौबीस घंटे के अंदर हो ही नहीं सकता था। स्त्रियों को थोड़े वक्त भी आराम ना करने की हिदायत देते हुए कहा गया कि ''स्त्रियों का खाली बैठना अयोग्यता की निशानी है और जब वे खाली बैठती है तो, अवश्य अपनी और परस्त्रियों के गुण–दोष गिनाती रहती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि अनेक क्लेश उत्पन्न हो जाता है (पृ0 84, नव. अंक 1875)

आज का स्त्री–विमर्श

आज का स्त्री–विमर्श विभाजन का शिकार है, कई आवश्यक और अनावश्यक मुद्दे विवादास्पद है, जैसे साहित्य में स्त्री–पुरुष दृष्टि, स्त्री–साहित्य, साहित्येतिहास में स्त्री और पृथक इतिहास की आवश्यकता, सैंसरशिप, स्त्री और भाषा आदि ''औरत की आजादी'' के आंदोलन को आज नाना प्रकार की प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ रहा है, चिली, नामिबिया, पेरू, बांग्लादेश,

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 08 Issue: 07 | July - September 2017
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

केन्या, रूस, पूर्वी यूरोप के देशों में कैथोलिक चर्च और हिन्दू परम्परावादियों की नजर में 'नारीवाद' अनैतिक आचरण का पर्याय है, जमीन से जुड़े आंदोलन–कर्ताओं के अनुसार, विशेषकर पूर्वी यूरोप के वामपंथियों के अनुसार नारीवाद मात्र एक बुर्जुआ विचार है एक तरफ 'नारीवाद' अपने पश्चिमी मूल के कारण विवादग्रस्त हुआ है तो, दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और पहचान की, उसकी विचारधारा, रणनीति और परियोजना विशिष्ट किस्म की है, इस विशिष्टता के कारण भ्रम यह होता है कि मुक्तिकामी, मानवाधिकार, के लिए किए जाने वाले अन्य आंदोलनों से नारियां नहीं जुड़ पायी है, इसी सिलसिले में यह भी मान लिया जाता है कि 'नारीवाद' अराजक मानसिकता का प्रतिनिधि करता है, सामाजिक व्यवस्था की चूलें हिलाकर रख देना चाहता है, तीसरी दुनियां के तो पुरुष ही स्वतंत्र नहीं है, तो भला स्त्रियां क्या मुक्त होंगी ? और जहां तक स्त्री की केन्द्र या मुख्यधारा में शामिल होने की मांग है, तो यह एक बचकानी मांग है, क्योंकि केन्द्र है ही कहां ? केन्द्र तो महज भाषा द्वारा निर्मित एक संकेत भर है, परिधि भी तो स्वयम् में एक केन्द्र है, लेकिन वास्तविकता कुछ और है, जिस भेदभाव को स्त्री महसूस करती है, वह केवल भाषागत संरचना नहीं है, दरअसल स्त्री को उसकी अधीनस्थता को इस कदर आत्मसात करा दिया गया है कि सत्ता की दमनकारी नीति वह स्वीकार करने लगी है, परम्परा ने उसे स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वतन्त्रता और राजनैतिक भागीदारी और यहां तक कि व्यक्तिबोध जैसे मूलाधिकारों से भी वंचित रखा है, सत्ता द्वारा नियोजित यह वंचना ही स्त्री को राष्ट्र के दायरे में अपनी पहचान सीमित करने के खिलाफ विद्रोह का आधार प्रदान करती है।

लंबे संघर्ष के पश्चात स्त्री पहले से थोड़ी बेहतर स्थिति में पहुंची है, फिर भी समूचा परिवेश स्त्री–विरोधी भाव–बोध से भरा हुआ है, आज स्त्री जितनी देखने में आकर्षक लगती है, उसके सवाल उतना आकर्षित नहीं करते हैं, जनतंत्र की स्थापना को आधी शताब्दी से भी ज्यादा समय गुजर चुका है, परन्तु गांव के गरीबों, दलितों और स्त्रियों में संगठित जनतांत्रिक सोच का विकास नहीं हो पाया है, संविधान में दलितों और स्त्रियों को अनेक अधिकार और कानूनी संरक्षण प्राप्त हैं, किन्तु उनके परिपालन की संभावनाएं दूर–दूर तक नजर नहीं आती है, हाल ही में महिलाओं को ''संपत्ति का अधिकार'' प्रदान किया गया है, लेकिन एक प्रतिशत महिलाओं ने भी पैतृक संपत्ति पर अपनी दावेदारी जाहिर नहीं की है, और न ही महिलाओं को सहजता से पुरुषों की तरह संपत्ति में कोई हिस्सा ही मिला है, घरेलू हिंसा के बढ़ते आंकड़े ने ''वर्तमान प्रगतिशील गठबंधन'' की सरकार को इसके खिलाफ कड़े कदम उठाने को बाध्य कर दिया है और उनकी केबिनट ने इससे संबंधित विधेयक संसद में लाने की मंजुरी दे दी है और अब इस विधेयक को सदन में लाने के लिए राष्ट्रपति की भी अनुमति हासिल हो गयी है। शहरों और ग्रामीण स्त्रियों की बात छोड़िए, राजधानी दिल्ली में ही यौन हिंसा और बलात्कार की घटनाओं में निरंतर वृद्धि हो रही है। कहने के लिए देश के विभिन्न शहरों में महिलाओं के विभिन्न विचारधाराओं को मानने वाले संगठन है, लेकिन इन संगठनों की अपनी ही सीमाएं है, आम स्त्रियों में जो आज चेतना और सजगता दिखाई पड़ती है वह सम्भवतः जीवनानुभव हो, स्त्री के पक्ष में की जा रही सारी कोशिशों के बावजूद, आज भंवरी बाई को नयाय नहीं मिला क्या इस उदाहरण की सीख से ही प्रेरणा लेकर नागपुर की अदालत परिसर में स्त्रियों की उग्र भीड़ ने सामूहिक रूप से वह हत्या और दर्जनों बलात्कार का आरोपी 'अक्कू यादव' को अदालत परिसर में ही भगा–भगाकर मार डाला इतना ही नहीं इस वारदात में जिन पाँच महिलाओं की संदिग्ध भूमिका थी, उसे गवाहों के आभाव में पुलिस और कानून के चुंगल से छुड़ाकर आम नागरिकों और स्त्रियों ने बकायदा आयोजन की शक्ल में उनका सम्मान किया'' यह उदाहरण है उन, आम स्त्रियों का हैं, जो किसी नारीवादी विचारधारा या संगठन से नहीं जुड़ी हैं, शायद यह हमारी सामाजिक, मानसिक प्रगति का ही द्योत्तक है कि आज आम स्त्री भी जागरूक होने की और अग्रसर है दरअसल आज का युग संक्राति का युग है, शहरी, ग्रामीण, शिक्षित, अशिक्षित, पारम्परिक और प्रगतिशील स्त्री कई परस्पर विरोधी स्वरूप और समस्याओं आज की स्त्री रूबरू है। यह सोच है कि आज की स्त्री ने कई क्षेत्रों में दक्षता हासिल की है, इसके बावजूद कहे ऐसे कई क्षेत्र हैं जहां आज भी उसकी अस्मिता गायब है, ऐसे ही लुप्त क्षेत्रों में से एक है स्त्री–साहित्य।

उपसंहार

स्त्री–विमर्श उपरी तौर से देखने में बेहद आसान, लेकिन आंतरिक तौर पर बेहद, जटिल और संवेदनशील मुद्दा है, हर युग ने अपने–अपने तरीके और जरूरतों के हिसाब से स्त्री को परिभाषित किया, साहित्य भी उससे अछुता नहीं रहा, साहित्य में नारी कभी ..... ''ढोल, गंवार शुद्र, पशु, नारी ये सब ताडन के अधिकारी'' के रूप में तिरिस्कृत हुई तो कभी ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो'' कह कर महिमामंडित हुई, विश्लेषण हमेशा पुरूषों के चश्में से ही हुआ, स्त्रियों ने खुद को कभी न तो परिभाषित किया, और न ही इसकी आवश्यकता को महसूस किया, लेकिन आधुनिक ज्ञान–विज्ञान ने सभी सोये प्राणियों के चक्षु खोल दिये हैं, और जिनकी चेतना जगी थी, उसे और धारदार बना दिया है और उनकी मूक खामोशी को आवाज का हथियार दिया है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि स्त्रियों की चेतना सुषुप्त नहीं जागृत थी उनके लोकगीत जो गेय परम्परा की अमूल्य निधि है उनमें उनकी व्यथा–कथा पिरोयी हुई है। विश्व की हर भाषा और साहित्येतिहास में भी उसकी उपस्थिति दर्ज है लेकिन उसे

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 08 Issue: 07 | July - September 2017
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

हमेशा हाशिए पर रखा गया, स्त्री–लेखन को वह स्थान नहीं मिला जिसकी वह अधिकारी थी। हमेशा पुरूष आलोचक की दृष्टि और मानदंडों पर ही उसे खरा उतरने को कहा गया, इस बात की संभावना से भी इनकार किया गया कि ''स्त्री–लेखन की पुरूष–लेखन से भिन्न स्वायत्त दृष्टि और बोध हो सकता है'' जाहिर है कि ऐसा होता तो, स्त्री लेखन को पुरूष आलोचना के मानदंडों पर खरा उतरने की विवशता नहीं होती। आज की लेखिका के सामने इस षडयंत्र का पर्दाफाश हो चुका है शायद तभी किसी कवयित्री ने लिखा है

पढ़ते हैं खुद/खुद नतीजे बनाते हैं।
मेरी दिवारों पर / क्या कुछ लिख गए लोग।

आधुनिक युग की सारी विडम्बनाओं के बीच जीती हुई, आज की स्त्री के पक्ष में कुछ सुखद है, तो वह यह है कि वह आज स्वर युक्त है, दरअसल स्त्री की टुटती खामोशी ही उसकी स्वतन्त्रता की पहली सीढी है, सूचना क्रांति के इस युग में स्त्री–चेतना में अभूतपूर्व क्रांति आयी हैं आज शिक्षित – अशिक्षित, ग्रामीण–शहरी, सभी स्त्रियों में बढ़ती जागरूकता के ग्राफ को सहज ही महसूस किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध में ''हिन्दी में स्त्री–विमर्श दृष्टि और दिशाएं'' शीर्षकर्न्तगत व्यापक फलक पर समाज और साहित्य में बदलती स्त्री – छवि और साहित्य की मुख्यधारा में समाहित होती, स्त्री, उसका जीवन, उसका लेखन, उसकी परम्परा, दृष्टि और उसके अस्तित्व को ही रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 08 Issue: 07 | July - September 2017
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

संदर्भ

1. ''स्त्रीत्व का मानचित्र'', अनामिका, पृष्ठ संख्या 74 सारांश प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1997
2. वही पृष्ठ संख्या 76
3. ''श्रृंखला की कड़ियां'', लेख (जीवन का व्यवसाय), महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या 78, भारती भंडार प्रेस, इलाहाबाद।
4. वही पृष्ठ संख्या 78
5. ''स्त्रीत्व का मानचित्र'', अनामिका, पृष्ठ संख्या 79 सारांश प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1997।
6. ''परम्परा का एक पन्ना स्त्री–शिक्षा के मूल्य और हिन्दी नवजागरण'', लेख, वीर भारत तलवार, पृष्ठ 107, आलोचना सहस्त्राब्दी अंक अक्टूबर–दिसम्बर, 2000, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 02।
7. वही पृष्ठ संख्या 109।
8. ''मिरात–उल–उरूस'', डिप्टी नजीर अहमद, पृष्ठ 21।
9. वही पृष्ठ 48।
10. ''स्त्री–शिक्षा की पहली किताब'' बाबू साहिब प्रसाद सिंह, पृष्ठ संख्या 12 खड़गविलास प्रेस प्र.स. 1883।
11. ''नोट्स ऑन ए नाइनटींथ सेंचुरी, हिन्दू केस ऑफ कंजुगल राइट्स, (संपादित), सुधीरचन्द्र, और रिप्रेजेंटिग हिन्दुईज्म, में शामिल लेख, पृष्ठ संख्या 155।
12. वही पृष्ठ संख्या 156।